आज के सन्दर्भ में कोंकणी कथा

—प्रकाश पर्येकार

आज की कोंकणी कहानियाँ किस जगह पर हैं? उसका प्रयास किस दिशा में है? उनका कथ्य और शिल्प की दृष्टि से वह अन्य भाषाओं की तुलना में कहाँ ठहरती हैं? भाषा-शैली एवं तकनीक आदि की तुलना में कोंकणी कहानियों में आज के समसामयिक प्रवृत्तियों एवं युगीन बोधों की चर्चा हो रही है कि नहीं? साहित्य जगत में इस प्रकार के प्रश्न लेखक, पाठक और आलोचकों द्वारा प्रायः पूछे जाते हैं। वस्तुतः यह कार्य आलोचकों और पाठकों का है। रचनाकार तो अपनी अनुभूति को व्यक्त करता है। मेरे विचार से साहित्य जगत में ऐसे प्रश्न नहीं पूछे जाने चाहिए।

कोंकणी कथा साहित्य का इतिहास लगभग 76 बरसों का है। सन् 1933 में शणै गोंयबाब का (स्वर्गीय वामन रघुनाथ शणै वालावलकार-1977-1946) **गोमन्तोपनिषद्-खंड-1** प्रकाशित हुआ। इस संग्रह में प्रकाशित **'म्हजी बा खंय गेली'** यह कहानी, कोंकणी आधुनिक कहानियों की नींव के समान है। यह बात तो सच है, लेकिन ऊपर उठाए गए सवाल का सही जवाब ढूँढ़ने के लिए हमें गोआ, कर्नाटक तथा केरल राज्य में सन् 1933 से 2005 तक प्रकाशित कहानियों का अध्ययन करना जरूरी है। दरअसल कई ऐतिहासिक कारणों की वजह से कोंकणी बोलनेवाली आम जनता महाराष्ट्र, गोआ, कर्नाटक और केरल इन चार राज्यों में बिखरी हुई है। वहाँ ये कोंकणी रचनाकार विभिन्न लिपियों में कई बरसों से लिखते आ रहे हैं। यह सिलसिला आज भी जारी है।

शुरुआत में कोंकणी की पाँच लिपियाँ थीं। केरल कोंकणी रचनाकार मलयालम लिपि प्रयोग करते थे। अभी वहाँ ज्यादातर रचनाकारों ने मलयालम लिपि को छोड़कर देवनागरी लिपि स्वीकार की है। एक ओर कर्नाटक राज्य में ज्यादातर लोग कन्नड़ लिपि में लिखते आ रहे हैं। तो दूसरी ओर भटकल प्रान्त में रहनेवाले नवायत मुसलमान अपने रोजमर्रा कार्यों में अरेबीक लिपि का प्रयोग कर रहे हैं। लेकिन इसमें वे साहित्य रचना नहीं करते। गोआ में कोंकणी साहित्य देवनागरी और रोमी लिपि में लिखा जा रहा है। गोवा की राजभाषा में देवनागरी लिपि को अधिकृत लिपि का दर्जा दिया गया है। एक लिपि में लिखा साहित्य अन्य लिपि के पाठकों को पढ़ने में मुश्किल होता है। कोंकणी कहानी कई लिपियों में लिखी जा रही है जिसके कारण पाठक वर्ग उसका ठीक से अध्ययन नहीं कर पा रहा है। इस हालत में उसकी गुणवत्ता, संख्या एवं उसके स्थान के विषय में निश्चित रूप से कुछ नहीं कहा जा सकता।

कोंकणी कहानी का स्रोत तो लोकजीवन एवं लोकसाहित्य में छिपा हुआ है। जोकि अन्य भाषाओं की तरह गोआ में प्रमुख तौर से सामाजिक और पौराणिक विषयों की लम्बी कहानियाँ सुनाने और सुनने की लम्बी परम्परा थी। यह परम्परा आज भी जारी है। सोलहवीं शती में फिर्गी पोर्तुगीज पादरियों ने रोमी लिपि में लिप्यन्तर किया हुआ था कोंकणी रामायण-महाभारत की कहानियों का संग्रह पढ़ने को मिलता है। लेकिन आधुनिक कोंकणी कहानियों पर उनका कितना असर पड़ा है, यह शोध की बात है, क्योंकि गोआ में अधिकतम रचनाकार मराठी, हिन्दी और अंग्रेजी जाननेवाले थे। इसके अलावा कई रचनाकार पोर्तुगीज और फ्रेंच भाषा भी जानते हैं। आज की नई पीढ़ी कोंकणी, हिन्दी मराठी और अंग्रेजी भाषा जानती है। कर्नाटक कोंकणी रचनाकार कन्नड़ तथा केरल के कोंकणी लेखक मलयालम अच्छी तरह जानते हैं। यह सब जानकर हम यह निष्कर्ष निकाल सकते हैं कि कोंकणी कथा साहित्य पर....उपर्युक्त भाषा साहित्य का प्रभाव निश्चित रूप में पड़ा होगा। और आधुनिक कोंकणी कहानी लिखने के लिए उसकी मदद भी निश्चित रूप से मिली होगी।

आधुनिक कहानी का संग्रह बीसवीं शती के सन् 1935 साल में 'वोंवलां' (सं. जयवंत कुलकर्णी) इस संग्रह में कुल मिलाकर 14 कहानियाँ हैं। और सन् 1950 में 'भूंयचाफीं' (सं. चन्द्रकान्त केणी) नाम के यह दो प्रतिनिधिक कहानी संग्रह गोवा मुक्ति के पूर्व प्रकाशित हुए हैं। पोर्तुगीज सरकार की सत्ता होने के कारण अभिव्यक्ति पर बंधन था। व्यक्ति स्वतन्त्र नहीं था। हमारे अधिकांश लेखक गोवा मुक्ति संग्राम में जुटे थे। पोर्तुवीज के शासन से गोआ सन् 1961 में मुक्त हुआ और कोंकणी साहित्य में नए प्रवाह, नया तत्त्व आने लगा। बंधन से मुक्त हुए कई लेखक कलम उठाकर साहित्य निर्माण में लग गए। श्री चन्द्रकान्त केणी ने प्रारम्भ में तन्त्रबद्ध कोंकणी कहानियाँ लिखीं। उनका पहला कहानी संग्रह 'धर्तरी आजून जियेतली' सन् 1964 में प्रसिद्ध हुआ। उसके बाद श्री दामोदर मावजो, श्रीमती शीला कोलंबकार, श्रीमती मीना काकोडकर, श्री. पुण्डलीक नायक आदि कई रचनाकार कहानी लिखने लगे। यह सब बीसवीं शती के सातवें दशक में हुआ। इसलिए कोंकणी आलोचक इस शतक को कथा शतक मानते हैं।

सन 1930 से 1970 तक कोंकणी कहानी की गति धीमी थी। कालान्तर में 70 के बाद तेज़ हुई। इसके कई कारण थे। गोवा मुक्त श्वांस लेने लगा था। कोंकणी जनलोक अपना खोया हुआ अस्तित्व तथा कोंकणी भाषा और संस्कृति में अपनी पहचान खोज रहा था। मैं कौन हूँ? मेरा प्रान्त, मेरी भाषा कौन-सी हैं। यह जानने के लिए वह उत्सुक था। इस तरह के कई प्रश्न उसको आन्दोलित कर रहे थे। मुक्त गोवा के ग्रामीण भागों में शिक्षा का प्रसार होने लगा था। सर्वसामान्य लोग शिक्षा लेने के लिए कष्ट झेल रहे थे। दूसरी तरफ कोंकणी साहित्य और कोंकणी-मराठी भाषा संघर्ष में जुटे कोंकणी लेखक कोंकणी भाषा के अस्तित्व के लिए संघर्ष कर रहे थे, क्योंकि गोवा मुक्त होने के बाद महाराष्ट्र और गोवा के कई लोग का विलिनीकरण महाराष्ट्र राज्य में चाहते थे। उनका मानना था कि गोवा की संस्कृति महाराष्ट्र की लोक संस्कृति से अलग नहीं है। गोवा महाराष्ट्र में जाएगा या मुक्त रहेगा यह तय करने के लिए सन् 1967 में लिया ओपिनीयन पोल में गोवा की विजय हुई।

इसके बाद सन् 1975 में कोंकणी भाषा को मिली साहित्य अकादेमी की राष्ट्रीय मान्यता ने कोंकणी का आत्मसम्मान बढ़ाया। कोंकणी भाषा को अन्य भारतीय भाषाओं जैसा समान स्तर मिला है। कोंकणी में भी स्तरीय साहित्य निर्माण करना होगा। इन बातों को ध्यान में रखकर कोंकणी रचनाकार लेखन कार्य में जुट गए और उन्हें सफलता भी मिली।

कोंकणी भाषा के स्वाभिमानी, कोंकणी रचनाकार कोंकणी साहित्य लेखन के आन्दोलन को आगे बढ़ाने का प्रयत्न कर रहे थे। उसका फल हमें गाँव में रहने वाले युवा पीढ़ी को कोंकणी लेखन से मिला। कोंकणी साहित्य रचना की अनुभूति प्रबल होने लगी। अन्य भाषा के लेखक जिस तरह स्तरीय कहानियाँ लिख रहे हैं, उसी तरह की कहानियाँ हम भी लिख सकते हैं। इस प्रकार का आत्मविश्वास कोंकणी के युवा लेखकों के बीच छलाँग लगाकर ऊपर आया। कोंकणी साहित्य के प्रान्त में सभी ओर से बहुत से कहानी रचनाकार कहानी लेखन करने लगे। एन. शिवदास, तुकाराम शेट, दत्ता नायक, जयमाला दणायत, डॉ. ओलविन गोमीश, गजानन जोग, महाबलेश्वर, हेमा नायक सहित अन्य कहानी लेखकों ने विविध विषयों को लेकर कहानियाँ लिखीं। कोंकणी

कहानी विषय और आशय में बहुत शक्तिशाली बन गई। श्री. दामोदर मावजो, श्री. पुण्डलीक नायक, श्री.एन. शिवदास और अन्य कहानी लेखक आंचलिक लोकमानस की आंचलिकता कोंकणी कहानियों में लाने में सफल हुए। उनके कहानी साहित्य में गोवा के मिट्टी की खुशबू आने लगी। सामान्य लोगों का जीवन, उनकी व्यथा, उनका सुख-दुःख और उनके सपने आदि कहानियों में पहली बार आए। प्रसादाफूल-1971, (सम्पादक श्री. अ. ना. म्हाबरो) स्वतन्त्र गोंयातली कोंकणी कथा-1985 (सम्पादक श्री. चन्द्रकांत केणी, साहित्य अकादेमी प्रकाशन) नामक कहानी संग्रह आए। कोंकणी आलोचको ने इसे कोंकणी कहानियों के वैभव का दशक कहा।

कोंकणी में शुरुआत में जो कहानियाँ लिखी गई उन कहानियों का दर्जा अन्य भारतीय भाषाओं की तुलना में कम नहीं था। उसका एक प्रमुख कारण यह है कि कोंकणी लेखक को परदेसी और भारतीय भाषाओं के साहित्य पढ़ने की आदत थी। श्री. चन्द्रकान्त केणी से लेकर अन्य कोंकणी रचनाकारों ने भारतीय और परदेस के भाषा की कहानियाँ पढ़ी थीं और उनका अध्ययन भी किया था। कहानियों का आधुनिक तन्त्र उन्होंने आत्मसात किया था। इसी कारण 1980 के दरम्यान कहानी लेखक में जो तीसरी पीढ़ी आई उनमें तन्त्रशुद्ध कहानियाँ पढ़ने को मिलीं। ग्रामीण भागों में निर्माण हुए कई प्रश्न उन रचनाकारों को अपने लगने लगे। हम जो कहानी साहित्य पढ़ते हैं और उसमें उठाए गए प्रश्न हमारे ही गाँव के हैं। कोंकणी कहानियों में हमारे ही गाँव का चित्रण किया गया है। यह साक्षात्कार नए कहानीकारों को होने लगा। विभिन्न रचनाकारों की भाषा, उनकी लेखन-शैली और कहानियों में इस्तेमाल की गई कोंकणी ग्रामीण भाषा ने उनका दिल जीत लिया। इसी तरह के बहुत सारे गुणात्मक परिवर्तन के कारण नए लेखक कोंकणी भाषा में लेखन करने लगे।

सन् 1987 में कोंकणी राजभाषा के आन्दोलन और सन् 1992 में कोंकणी भाषा को संविधान की आठवीं अनुसूची में स्थान मिलने से कोंकणी आम जनता का उत्साह दुगुना हो गया। कोंकणी भाषा को मिली इस जीत का प्रतिबिम्ब कोंकणी समाज के ऊपर खूब पड़ा। फलतः रचनाकारों के लेखन को धार और तेज हुई। इस प्रकार सन् 1980, 1990 और 2000 में क्रमशः तीसरी, चौथी और पाँचवीं पीढ़ी के लोग कहानी लेखन में सक्रिय हो गए।

जब हम सदी संधिकालीन कोंकणी कहानी पर विचार करते हैं तो गोवा की सामाजिक, राजनीतिक, आर्थिक स्थिति, शिक्षा, उद्योग, वैश्विक हलचल, मीडिया आदि को नहीं छोड़ सकते। ये सारे तत्व कहीं-न-कहीं रचनाकार की मानसिकता को झंकृत करते हैं। 20वीं शती तो विचार परिवर्तन की शती मानी जाती है। पहला और दूसरा महायुद्ध....स्वातन्त्र्य के लिए वैश्विक स्तर पर हुआ संघर्ष और संग्राम के वास्ते इस शती में सब देशों में विविध वर्गों में विचार मंथन प्रक्रिया शुरू हुई। कोंकणी लेखक भला इससे कैसे छुटकारा पा सकता है? गोवा मुक्त होने के बाद सामाजिक और सांस्कृतिक कई संस्थाओं का उदय हुआ। उद्योग के कारण भोगवादी संस्कृति का उदय हुआ। और इसको लेकर नई समस्याएँ निर्माण होने लगी।

कोंकणी रचनाकारों ने यह सब देखा, समझा और उसका अनुभव किया। वास्तविक जीवन को परखा और उसका चित्रण अपनी कहानियों में किया। यहाँ व्यक्ति को साहित्य में महत्वपूर्ण स्थान मिलने लगा। इस सबका प्रतिबिम्ब कोंकणी कहानियों में हमें देखने को मिलता है। इस प्रकार की कहानियाँ प्रतिनिधिक कहानी-संग्रह वैयक्तिक कहानी-संग्रह और विभिन्न पत्रिकाओं में प्रकाशित किए गए कहानियों में देखने को मिलती है।

प्रस्तुत आलेख में मैंने **'आयच्या पेण्यार कोंकणी कथा'** शीर्षक में सन् 1998 से सन् 2005 तक की प्रकाशित कोंकणी कहानियों को लिया है और उन्हीं के आधार पर मैंने यहाँ कहानियों का यहाँ विवेचन किया है। इस आठ साल के कालखण्ड में गोवा में कई कहानियाँ जाग, कोंकणी दिवाली अंक, कोंकण टाइम्स, बींब, जैत और अन्य पत्रिकाओं में प्रकाशित हुई हैं। कोंकणी में कुछ तो सदाबहार कहानियाँ लिखनेवाले रचनाकार हैं। और अन्य सिर्फ दिवाली अंक में अपनी कहानियाँ प्रकाशित करते हैं। मीना काकोडकार, दामोदर मावजो, चन्द्रकान्त केणी, गोकुलदास प्रभु, महाबलेश्वर सैल, गजानन जोग, शिला कालेकार, हेमा नायक, जयंती नायक, देविदास कदम, प्रकाश पर्येकार, माया खरंगटे, रामनाथ मावडे आदि कहानीकार की कहानियाँ जाग में प्रकाशित होती हैं।

इन कथाकारों में श्री. चन्द्रकान्त केणी नियमित कहानी

लेखन करते हैं। पिछले चालीस पैंतालीस बरस के कालखण्ड में इस लेखक ने पाँच सौ के ऊपर कहानियाँ लिखी हैं। महत्वपूर्ण प्रसंग और ज्यादातर स्त्री पात्रों को लेकर कहानी लिखने का तन्त्र उन्हें अच्छी तरह से मालूम है। मनुष्य के अंतःकरण में उतरकर उनकी मनोव्यथा को वे चित्रित करते हैं। व्यक्ति के चित्र में कहानीकार किस तरह रंग भरता है यह जानने के लिए श्री. चन्द्रकान्त केणी की कहानियाँ हमें पढ़ना जरूरी हैं। अपने कथा साहित्य में उन्होंने हजारों व्यक्ति रेखाएँ चित्रित की हैं। पिछले कई महीनों में उन्होंने **नर्तकी, चकचकता तें भांगर न्हय, अहिल्या, गाब्रू, मंगल पाण्डे (1999), हिरू (2000), चलून आयिल्ली लक्ष्मी राणी रूपमती, करुणा, कोण कोणाचो (2001), आत्मशक्त, देवतेची मागणी (2002), खरें फट देवाक खबर (2004), नाटक (2005)** और इसी तरह की कई रचनाएँ उन्होंने लिखी हैं।

कोंकणी कहानी साहित्य में श्री. दामोदर मावजो का स्थान अलग है। पिछले चालीस बरसों से वे कहानियाँ लिखते आए हैं समुद्र तट के आसपास का लोकजीवन और ईसाई समाज जीवन की रेखाओं से लेखक ने अपनी रचनाओं में अच्छी तरह से चित्रित किया है। उन लोगों की इच्छा, उनके रंग-ढंग, उन लोगों की भाषा आदि को उन्होंने कोंकणी कहानियों में अंकित किया है। आज तक इनके **गांथन, जागरणा, रूमडफूल और भुरगीं म्हगेलीं तीं** ये कहानी संग्रह-प्रकाशित हो चुके हैं। 'भुरगीं म्हगेलीं तीं' कहानी संग्रह 2001 में प्रकाशित हुआ है। इस संग्रह में 14 महानियाँ हैं। ज्यादातर ईसाई लोग जहाँ रहते हैं उस भाग में लेखक का जन्म हुआ है और वहीं गुजारा भी है। इसलिए उनके साहित्य में ईसाइयों का जीवन चित्रित होना स्वाभाविक है। **भुरगीं म्हगेलीं तीं** इस कहानी संग्रह में वे लिखते हैं (पान-10) **''मेरी ज्यादातर कहानियाँ ईसाइयों के जीवन पर लिखी हुई हैं। मैंने अनुभूति लिया हुआ विश्वं हिन्दू परिवार में जन्म लेकर ईसाई समाज में मैं बड़ा हो गया। ईसाई समाज में रहने से और उन समाज में बड़ा होने से मेरा अनुभव विश्व ने बढ़कर उसने विस्तारित रूप धारण किया है। ईसाई समाज का जीवन मैंने मेरे कहानी रचना में जितने यथार्थ से चित्रित किया है उस तरह से और किसी कोंकणी लेखक ने अब तक नहीं किया होगा। लेकिन मैं पूर्ण समाधानी नहीं हूँ। मुझे मेरी मर्यादा की सीमारेखा मालूम है। ईसाईयों का जीवन मैंने जितना समझा उतना ही मैंने कोंकणी कहानियों में चित्रित किया है।''**

श्री. देवीदास कदम की **फट, किर्ती पुरुष, वंसकोंब, लक्ष्मी (1999), कुलार (2000) इज इट टू लेट (2001), नव्या परब (2002), महाबलेश्वर सैलजी की : दुख, मिर्गवाल, निमणो अश्वत्थामा (1999), काल कालोख, (2000), कालखा पलतडी, (2001), पाँचवें मलब (2002), मनीसबुडी (2004), गजानन जोग की : निमणी मैफल, म्होंव आनी मूस (1999), घर प्रवेश (2000) खांद (2002), प्रकाश पर्येकार की : वर्सल (1998), आनी ते पोट घेवन गेले, मोनेल माया, घोंटिर (1999), चन्द्रकोर, ज्यानी (2000), शिला कोलंबकार जी की : बापूय, पूत आनी हांव (1999), निशा (2000) बायल मनीस (2002)** आदि कहानियाँ चार वर्ष के कालावधि में प्रकाशित हुई हैं। उन्हें पढ़ने के बाद मालूम होता है कि आज के कोंकणी कहानीकार विविध विषयों को लेकर कहानियाँ लिख रहे हैं। ये विषय गाँव से लेकर शहर तक का सफर करते हैं और हमें हमारे प्रान्त में जो बदलाव दिखाई दे रहा है उसका सच्चा और यथार्थ चित्रण कराते हैं।

श्री. महाबलेश्वर सैलजी ने कोंकणी कहानी साहित्य में महत्वपूर्ण योगदान दिया है। उनका नाम एक कोंकणी कादम्बरी लेखक के नाम से जाना जाता है। इस लेखक ने कहानियाँ लिखकर कोंकणी साहित्य के दरबार में प्रवेश किया। **'पलतडचें तारू'** उनका पहला कहानी संग्रह हैं। उसके बाद **तरंगां, बायोनट फायटींग** यह दो कहानी-संग्रह प्रकाशित हुए हैं। इस लेखक ने कारवार कर्नाटक प्रान्त के कालीनदी के सरोवर में बैठे लोकजीवन की अपने साहित्य में अच्छी तरह चित्रित किया है। यह लेखक खेत में काम किया हुआ और हल जोतने वाला है। कहीं बरस उसने लष्कर में नौकरी की है और उसके बाद गोवा में पोस्ट मास्टर की नौकरी ...अपने लेखन में उसने मनुष्य की अलग-अलग धाराएँ बहुत विस्तार से और बारीकी से लाई हैं। अपने **बायोनेट फायर्टीक** कहानी संग्रह में लश्करी जीवन बिताने वाले सैनिकों का सुख-दुःख पढ़ने को मिलता है। **सूर्यफल, खरेंच हांव चुकिल्लो, बायोनेट फायटिंग, जल्मांतर** इसी तरह के कहानियों में वे फौजी भाईयों के जीवन का चित्रण बहुत सन्दर तरह से करते हैं। भारतीय फौज में काम करने से लेखक का अनुभव विश्व बहुत गहरीला है।

पत्रिका में प्रकाशित हुए कहानियों में से **जाग** मासिक में 2004 साल के दिवाली अंक में **मनीसबुडी** शीर्षक की एक कहानी प्रकाशित हुई है। बाढ़ आने से लोग बहुत आक्रान्त हैं। इसमें सरकार की ओर से मिलनेवाली आर्थिक सहायता के लिए किसी और के मृत शरीर को अपना बाप कहकर पैसा उठाने की कोशिश का जिक्र हैं। इस अमानुष विचारधारा का यथार्थ चित्रण इस कहानी में हमें पढ़ने को मिलता है।

श्री. प्रकाश पर्येकार का नाम कोंकणी के नए पीढ़ी के कहानीकारों में आता है। ग्रामीण प्रान्त में जन्में लेखक ने अपने तरल अनुभव के द्वारा मनुष्य के अलग-अलग प्रवृत्तियों पर अपनी कहानियों के द्वारा प्रकाश डाला है। उसकी **काजरफल, मोनेलमाया, वर्सल, आनी ते पोट घेवन गेले, चन्द्रकोर** और **ज्यानी** कहानियों में उन्हें अछूत, पानी में मिलने वाला घड़ियाल की चर्बी निकलने वाले बंजारे लोग, बन्दर को मारकर खाने वाले **बनमरवा** और धनगर जमात और अन्य के जीवन को चित्रित किया है। प्रकाश पर्येकार की कई अनुवादित कहानियाँ भारतीय भाषाओं में प्रकाशित हुई हैं। समकालीन भारतीय साहित्य और भाषा पत्रिका में हिन्दी अनुवाद प्रकाशित हुआ है।

श्री. भालचन्द्र गांवकर का **अंदल्ले स्वास** (1998) और **दोंगराचे आंवडे** (2003), सौ. माया खरंगटेजी का **घोंटेर** (2000) श्री. एन. शिवदास का **महारुख** (1999) और **भांगरसाल** (2005) कु. जयंती नायकजी का **अथांग** (2002) आदि कहानी-संग्रहों ने कोंकणी कहानी द्वारा साहित्य में बहुत अच्छा योगदान दिया है। **अथांग** कहानी संग्रह में लेखिका जयंती नायकजी लिखती हैं। **पिछले बारह साल के काल में मैंने लगभग 35 कहानियाँ लिखी हैं। उसमें से आधी कहानियाँ ग्रामीण विषयों पर ही हैं। मेरी ये कहानियाँ ग्राम संस्कृति के अलंकार माथे के बाल से पाँवों के नाखून तक डालकर दिखावा करते थे। और आधा कहानियाँ में मेरे बदलते हुए जीवन अनुभवों का कथाबीज के रूप में लिया गया है।'** उनके वक्तव्य से पता चलता है कि लेखिका ने अपने कथा साहित्य में ग्रामीण और शहरी जीवन का समतोल चित्रण किया है।

श्री. एन शिवदासजी के तीन कथा संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं। **गलसरी, महारुख** और **भांगरसाल (2005)** अनुभवनिष्ठ सामाजिक समझ यह उनकी कहानियों का मानदण्ड हैं। गोवा के अलग-अलग आन्दोलनों में समाजमन के स्पन्दन को लेखक ने अपनी कहानियों में सजीव रूप में चित्रित किया है।

आजकल बहुत सारे युवा कथा लेखक नियमित लेखन कर रहे हैं। उनमें से कई कथाकारों के कहानी-संग्रह प्रकाशित हो चुके हैं और कई लेखकों की कहानियाँ पुस्तक रूप में आने वाली हैं। **अशोक कथा** यह नाम लेकर श्री. अशोक कामत जी का कहानी संग्रह 2002 साल में प्रकाशित हो चुका है। इस तरह **बा** (2001) श्री. जयंत नायक का, **कालचक्र** (2001) श्री. अतुल पंडित का और **थीकां** सौ. नम्रता सालेलकार जी का कहानी संग्रह 2003 साल में प्रकाशित हो चुका है। इन कहानी-संग्रहों में मध्यमवर्गीय जीवन का संघर्षात्मक रूप चित्रित किया गया है। नम्रता सालेलकरजी ने औरतों के अन्तर्मन का शोध लेने का प्रयास किया है। सौ. माया खरंगटे ने भी अपने **घोंटेर** कहानी संग्रह में औरत को लेकर समाज को भड़कानेवाले विविध तत्कालीन प्रश्नों को अपने कहानियों में चित्रित किया है।

आज कोंकणी कहानी उच्च सोपानों पर चढ़ रही है। गोवा के विविध अंचल में रहने वाले ये लेखक अपने अचंल के जीवन को बहुत सुन्दर तरीके से कोंकणी कहानी साहित्य में लाने की कोशिश कर रहे हैं। इस कारण कहानियों के कथ्य एवं शिल्प एक-दूसरे से अलग-अलग से लगते हैं। उसकी विविधता में अपने प्रदेश की भाषा भी भिन्न-सी हैं। अपने प्रान्त की भाषा की खासियत दामोदर मावजो अपने कथा-संग्रह में लाते हैं। उसी तरह प्रकाश पर्येकार ने अपने इलाके की भाषा और पात्रों को अपनी कहानियों में प्रमुखता दी है।

कोंकणी आधुनिक कहानी की शक्ति को दूसरी ओर अन्य भारतीय भाषाओं के पाठक को समझना चाहिए। उनके लिए कोंकणी कहानी का उस भाषा में अनुदित होना जरूरी है। भारतीय शिखर कोश में **कोंकणी कहानियाँ-1992** सत्ताईस कोंकणी कहानियों का हिन्दी रूप प्रकाशित हो चुका है। पेंग्वीन प्रकाशन का **फेरी क्रोसिंग** के नाम से कोंकणी कहानियों का अंग्रेजी संकलन भी प्रकाशित हो चुका है। कई लेखकों की कहानियाँ **तेलगू, मलयालम, उड़िया, कन्नड़, बंगाली, हिन्दी, मराठी, अंग्रेजी, पुर्तुगीज** भाषा में अनुवादित हो चुकी हैं। कई कोंकणी कहानी लेखकों को दिल्ली के राष्ट्रीय कथा

पुरस्कार से सम्मानित किए जा चुके हैं। **समकालीन भारतीय साहित्य और इंडियन लिटरेचर** राष्ट्रीय पत्रिका में कोंकणी कहानियों का अनुवाद अब आने लगा हैं। साहित्य अकादेमी ने **कोंकणी कथा मराठीत** यह कोंकणी कहानियों का मराठी भाषा में अनुवादित करके संग्रह प्रकाशित किया है। इस कहानी साहित्य का अन्य भाषा के पाठकों ने अच्छी तरह स्वागत किया है। इस कोंकणी साहित्य के अनुवाद का कार्य जीवन्त रूप में दिखाई दे रहा है। वैसे कई लेखकों की कहानियाँ भारतीय और अन्य परदेसी भाषाओं में अनुवादित हो चुकी हैं लेकिन यह काम वैयक्तिक तौर पर हुआ है। जब तक कोंकणी कहानियाँ अनुवादित होकर अन्य भाषाओं में प्रकाशित नहीं होंगी तब तक कोंकणी कहानियों के महत्व को रेखांकित नहीं किया जा सकता।

सन्दर्भ ग्रन्थ

1. **साहित्य शिल्प**–गोवा कोंकणी अकादेमी, 1995।
2. **साहित्य नियाल**, अन्तरंग आनी कायारपां–डॉ. किरण बुडकुले।
3. **कथावली**, गोमन्तकीय कथांचे संकलन–प्रस्तावना, इंस्टिट्यूट मिनेझिस ब्रागांझा, पणजी।
4. **समकालीन कोंकणी लघुकथा**, प्रस्तावना–नेशनल बुक ट्रस्ट, इंडिया।
5. **भुरगीं म्हगेलीं तीं**, प्रस्तावना–दामोदजर मावजो।
6. जाग (कोंकणी महयनालें) 1998 ते 2005।